समयसार, छठवें कलश का भावार्थ चलता है। छठा कलश है न ? यहाँ आया है.... **इसलिए आचार्य कहते हैं....** यहाँ आया है। अन्तिम तीन लाईन है। क्या इसलिए ? कहते हैं, व्यवहार से नवतत्त्व के भेद की श्रद्धा, वह श्रद्धा यथार्थ नहीं है। उसमें तो व्यभिचार आता है, नियमरूप सम्यग्दर्शन नहीं होता। भेदरूप व्यवहार, हाँ! नवतत्त्व, आया न ?

जब तक केवल व्यवहारनय के विषयभूत.... उसकी पहली लाइन.... **जीवादि भेदरूप तत्त्वों का...** जीव-अजीव आदि नौ का भेदरूप, भेद का **श्रद्धान रहता है...** तब तक निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया ? **इसलिए...** इस कारण से.... सूक्ष्म बात है। भाई! आहाहा! **आचार्य कहते हैं कि इस नव तत्त्व की सन्तति (परिपाटी) को छोड़कर....** नव तत्त्व के अनेक प्रकार के भेद को **छोड़कर, शुद्धनय का विषयभूत....** आहाहा! जो आत्मा अनन्त गुणस्वरूप, अनन्त-अनन्त गुणस्वरूप, जो अनन्त गुण में — यह अन्तिम का, अनन्तवाँ गुण है और यह अन्तिम गुण की पर्याय है — ऐसा है नहीं। क्या कहा ? आहाहा!

जो भगवान आत्मा जो द्रव्य एक है, उसमें अनन्त गुण हैं, तो अनन्त गुण में यह गुण अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... लेकर यह अन्तिम गुण है — ऐसा उसमें नहीं आता है। आहाहा! समझ में आया ? आहा! जैसे क्षेत्र का कोई अन्त नहीं है कि कहाँ आकाश पूर्ण हुआ ? आहाहा! अपार, अपार, अपार, अपार, अपार, अनन्त, अनन्त, अनन्त... एक क्षेत्र का भी कहीं अन्त है — ऐसा है नहीं। आहाहा। और काल की भी कहाँ से शुरुआत हुई, वह है नहीं। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा में, भाव यह लिया, क्षेत्र का अन्त नहीं, काल का अन्त नहीं, शुरुआत (नहीं) और अन्त का अन्त नहीं।

आहाहा! ऐसे यह भगवान आत्मा अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण की राशि पिण्ड, यह अनन्त गुण में यह एक दो तीन अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... ऐसे कहकर अन्तिम / आखिर का धर्म / गुण आया — ऐसी चीज है नहीं। आहाहाहा!

श्रोता : यह भगवान महावीर की आत्मा की चर्चा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो प्रत्येक आत्मा की चर्चा है, प्रभु! आहाहा! भाई! गम्भीर चीज है। आहाहाहा!

वस्तु जो भगवान आत्मा, यह (निज) भगवान की बात चलती है आहाहा! इसमें इतनी संख्या में गुण है कि आकाश का अन्त नहीं, इतने जो प्रदेश हैं, अन्त नहीं — इतने प्रदेश हैं, उससे अनन्त गुने धर्म / गुण आत्मा में हैं। आहाहाहा! उसका क्षेत्र में अन्त आ गया-असंख्य प्रदेश में (अन्त आ गया) परन्तु जो भाव की-गुण की संख्या की मर्यादा है.... प्रभु! वह कोई अलौकिक बात है नाथ! ये अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त का यह, यह गुण अनन्त का अन्तिम है — ऐसी चीज है नहीं। आहाहा! क्या कहते है यह! आहाहा! समझ में आया? जैसे क्षेत्र का अन्त नहीं; कहाँ अन्त है उसका? अन्त हो तो पीछे क्या? आहाहाहा! एक क्षेत्र का स्वभाव भी कोई अलौकिक है, और काल का स्वभाव भी (अलौकिक है)! पर्याय की पहली शुरुआत कहाँ से हुई, आहाहा! और काल पहले से-कहाँ से शुरु हुआ और द्रव्य की पहली पर्याय कहाँ से हुई? आहाहाहा!

प्रभु! तेरा द्रव्य स्वभाव, क्षेत्र स्वभाव, काल स्वभाव, द्रव्य स्वभाव कोई अलौकिक है, प्रभु! आहाहाहा! समझ में आया? तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव की इच्छा बिना, वाणी के कारण वाणी-दिव्यध्वनि निकली, उसमें ऐसा आया था। आहाहाहा! प्रभु! तुम कितने गुण की संख्या में हो? आहाहाहा! जैसे उस क्षेत्र का कहीं अन्त नहीं, यह क्या है नाथ? नास्तिक भी विचार करें तो... यह क्षेत्र कहाँ-कहाँ पूरा हुआ? अकेला वांचन करके नहीं परन्तु उसके भाव में विचार करके... आहा! कहाँ पूरा हुआ क्षेत्र? आहाहा! कोई अनन्त... अनन्त क्षेत्र का स्वभाव भी ऐसा अनन्त है। काल का प्रारम्भ कहाँ से हुआ? उसका भी

अन्त नहीं — ऐसा काल का भी अनन्त स्वभाव है। आहाहा! ऐसे एक भगवान आत्मा में संख्या में जो अनन्त गुण हैं, वे अनन्त कितने अनन्त? आहाहा! एक क्षेत्र का जो अनन्त है, उसका जो प्रदेश है, उससे भी अनन्त गुणे धर्म / गुण आत्मा में हैं। आहाहाहा! इतने गुण, एक परमाणु में भी इतने अनन्त हैं। आहाहा! क्या कहते हैं यह? प्रभु! तेरा स्वभाव कोई अलौकिक है, भाई! समझ में आया? रागादि विकल्प है, उसकी तो मर्यादा है, सीमा है, क्योंकि मर्यादित है तो छूट जाता है। आहाहाहा! चाहे तो व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प हो, परन्तु वह मर्यादित है। वह राग मर्यादित है, अमर्यादित नहीं कि नहीं छूटे। आहाहाहा!

भगवान आत्मा के गुण अमर्यादित हैं। आहाहाहा! यह क्या कहते हैं? अमर्यादित.... मर्यादा नहीं.... यह कहाँ पूर्ण हुए? आहाहा! अनन्त को अनन्त गुणा वर्ग करो तो भी जिसका अन्त नहीं, इतने आत्मा में गुण हैं। आहाहा! ऐसे अनन्त गुण में गुणभेद की दृष्टि करना, वह भी अभी मिथ्यात्व और व्यवहार है। यहाँ नव तत्त्व का व्यवहार विषय कहा न भेदरूप, उसे मिथ्यात्व कहा। आहाहा! दूसरी प्रकार से कहे तो नव तत्त्व के परिणमन की दशा अनादि की है। वह सच्चा संवर, निर्जरा और मोक्ष नहीं परन्तु व्यवहार से जितना आस्रव नहीं होता, उसे संवर; जितना कर्म का उदय झर जाता है, उसे निर्जरा; एक अंश बन्ध का अभाव हो, उसका नाम मोक्ष व्यवहार.... ऐसा नव तत्त्वरूप तो जीव अनन्त बार अनन्त काल से परिणमित हुआ है। आहाहा! समझ में आया?

अत: यहाँ कहते हैं, **आचार्य....** ओ हो... ऐसे नव तत्त्व का भेदरूप भाव, वह व्यभिचार है, व्यवहार है, उसमें सम्यग्दर्शन नहीं हुआ, सत्यदर्शन, वह पूर्णानन्द का नाथ अनन्त गुण का पिण्ड जिसके गुण का अन्त नहीं, ऐसे स्वभाव सम्यक् सत्य दर्शन में आते है तो मिथ्याभेद में वह श्रद्धा नहीं आती। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन.... सम्यग्दर्शन.... सत्यदर्शन जो सत्य चीज पूर्णानन्द अनन्त अनन्त अनन्त अनन्त अनन्त अनन्त गुण की राशि का कहीं अन्त नहीं — ऐसा जो द्रव्यस्वरूप (है), उसकी प्रतीति.... इस विकल्प से वह प्रतीति नहीं होती है। आहाहा! क्योंकि विकल्प जो राग है, वह तो मर्यादित है; अत: विकल्प से रहित.... आहाहा! आचार्य माँगते हैं कि हमें तो अकेला आत्मा हो! आहाहा! है? आहाहा!

भाई! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर का यह भाव है। सुन प्रभु! तेरी शक्ति तो अपार है। तुम सुखामृत का सागर प्रभु हो, संख्या में अनन्त गुण हैं और एक-एक गुण में अनन्त संख्यावाले गुण का रूप अनन्त है। क्या कहा? आत्मा में अनन्त, जिसका अन्त नहीं इतनी संख्या में तो गुण हैं और एक गुण में अनन्त संख्या में जो गुण हैं, उस एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप है। आहाहा! जैसे ज्ञानगुण है, अस्तित्वगुण है, वे तो भिन्न हैं परन्तु अस्तित्वगुण का, ज्ञान है, ज्ञान है — ऐसे ज्ञान में अपने अस्तित्व का रूप है — ऐसे एक गुण में अनन्त का रूप है। आहाहाहा! ऐसा अमृत का महासागर भगवान, आहाहा! निर्विकल्प सामान्य वस्तु ध्रुव, वह हमको प्राप्त हो — आचार्य ऐसा कहते है। हमको यह नव के भेद (प्राप्त न हो) आहाहा! है?

नव तत्त्व की सन्तति-परिपाटी को छोड़कर शुद्धनय का विषयभूत एकरूप.... भगवान अनन्त गुण में एकरूप, अनन्त धर्म स्वभाव का एकरूप। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई! यह तो जिनेश्वर, तीन लोक के नाथ परमात्मा.... आहाहा! जिनकी एक पर्याय में-जिनकी ज्ञान की एक पर्याय है, उस एक पर्याय में भी अनन्त गुण और द्रव्य जानने में आते हैं, और एक पर्याय में अनन्त पर्याय, पर्याय कितनी अनन्त है एक समय में कि उस पर्याय का अन्त नहीं.... क्या कहा? अनन्त गुण की एक समय में अनन्त पर्याय हैं, उन अनन्त पर्यायों में भी किसी पर्याय का अन्त नहीं कि यह अन्तिम पर्याय है। आहाहाहा! ऐसी एक समय में अनन्त गुणों की (पर्यायें हैं)। जैसे गुण का अन्त नहीं, अपार है; वैसे उसकी पर्याय का भी अन्त नहीं कि यह-यह-यह अन्तिम पर्याय है! अनन्त अनन्त अनन्त अनन्त में यह अन्तिम — ऐसी बात नहीं है। पण्डितजी! समझ में आते हैं? आहाहाहा!

श्रोता : पूरी सूक्ष्म बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी है, भगवान! दुनिया को यह चीज मिली नहीं न.... आहाहा! बाहर में भटका-भटक करते हैं। आहा! नव तत्त्व की भेदरूप श्रद्धा, पञ्च महाव्रत की क्रिया, वह सब तो मनुष्य व्यवहार है, वह आत्म व्यवहार नहीं है। प्रवचनसार, गाथा ९४! प्रवचनसार की ९४ गाथा। आहाहा!

नव तत्त्व की भेदरूप की श्रद्धा, वह विकल्प, राग, पञ्च महाव्रत का, २८ मूलगुण

का विकल्प — राग और शास्त्र का पढ़ना, पर तरफ के लक्ष्य से, वह भी राग है, तो कहते हैं... आहाहाहा! वह राग का व्यवहार है, वह मनुष्य व्यवहार है, चार गति में भटकने का - मनुष्य व्यवहार है। आहाहा! तब आत्म व्यवहार क्या? आहाहा! वह तो मनुष्य व्यवहार अर्थात् संसार व्यवहार-गति का व्यवहार हुआ। आहाहा! तो आत्म व्यवहार क्या? कि भगवान आत्मा एक समय में ऐसे अनन्त अनन्त अनन्त अनन्त अनन्त; गुण का अन्त रहित स्वरूप की निर्विकल्प (प्रतीति कर सके वह) राग की शक्ति नहीं है कि निर्विकल्प तत्त्व को प्रतीत कर सके। आहाहा! यह शुभराग की ताकत नहीं है। समझ में आया? आहाहा! यह पूर्णानन्द का नाथ अपार, अपार, अपार, अपार, अपार — ऐसा शक्ति का सागर है, उस पर दृष्टि हो, वह निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, वह निश्चय सम्यग्दर्शन; और उस अपार अपार गुण के पिण्ड प्रभु का ज्ञान हो, वह सम्यग्ज्ञान, और उसमें स्थिरता हो.... अनन्त अनन्त ऐसे गुण की प्रतीति की पर्याय में कितनी ताकत आयी? उस प्रतीति में द्रव्य-गुण नहीं आये। समझ में आया? वे द्रव्य-गुण प्रतीति में नहीं परन्तु प्रतीति में द्रव्य-गुण का स्वरूप है, वह प्रतीति में आ गया। आहाहाहा! ऐसा जहाँ स्वभाव है न, प्रभु! ऐसी प्रतीति और ज्ञान और रमणता, वह भी व्यवहारनय से, पर्याय प्रधान से, मोक्ष का मार्ग कहा जाता है। २४२ गाथा, प्रवचनसार, २४२ गाथा! कल प्रश्न हुआ था न? ज्ञेय ज्ञायक की प्रतीति वह सम्यग्दर्शन.... ऐसा २४२ गाथा प्रवचनसार (में) आया। ज्ञेय और ज्ञायक की.... ज्ञेय जितना है और ज्ञायक जितना स्वभाववाला प्रभु है, दो का ज्ञान होकर प्रतीति होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन लिया है। समझ में आया?

ज्ञेय अनन्त अनन्त ज्ञेय — अनन्त सिद्ध, अनन्त निगोद, अनन्त जीवद्रव्य की संख्या से अनन्तगुणे परमाणु, उससे अनन्तगुणा काल की पर्याय, आहाहा! उससे अनन्तगुणा आकाश के प्रदेश, उससे अनन्तगुणे एक द्रव्य में गुण — ऐसा ज्ञेय का ज्ञान और ज्ञायक का ज्ञान..... सूक्ष्म बात है प्रभु! आहा! ऐसे ज्ञेय और ज्ञायक का यथार्थ ज्ञान होकर प्रतीति होना, वह सम्यग्दर्शन है — ऐसा लिया है — २४२ गाथा, प्रवचनसार, चरणानुयोग, (सूचक चूलिका में लिया है)। चरणानुयोग (सूचक चूलिका) है न? २०१ से २७५ (गाथा तक) चरणानुयोग (सूचक चूलिका) है। आहाहा! ९२ गाथा में (अर्थात् गाथा तक) ज्ञानयोग है — ज्ञान (तत्त्व प्रज्ञापन) अधिकार है और ९३ से २०० गाथा तक ज्ञेय

(तत्त्व प्रज्ञापन) अधिकार है। उस ज्ञेय अधिकार में ९४ गाथा में यह आया है कि ज्ञेय का स्वरूप ऐसा है। आहाहाहा! कि जितनी रागादि की क्रिया है, वह सब मनुष्य व्यवहार है। संसार का व्यवहार है, उस ज्ञेय की पर्याय में यह विकृत अवस्था उत्पन्न हो.... आहा! क्रियाकाण्ड आदि की.... और उस ज्ञेय के पूर्ण स्वरूप की प्रतीति, पूर्ण का ज्ञान और रमणता तीनों, ये तीनों पर्याय का व्यवहार है, यह आत्म व्यवहार है। आहाहा! और निश्चय, एकरूप भगवान में एकाग्रता, वही यहाँ निश्चय है। यही यहाँ चाहते हैं। आहाहा! यह तो दिगम्बर सन्तों की बलिहारी है! दिगम्बर सन्तों की वाणी, ऐसी वाणी कहीं नहीं है — ऐसी चीज कहीं नहीं है। श्वेताम्बर और स्थानकवासी (में भी) यह बात (कहीं नहीं है) बापू! दु:ख लगे, क्या करें? परन्तु यह चीज है ऐसी है, वैसी कहीं नहीं है। इसके भाव का किंचित् भान करे तो पता पड़े कि क्या चीज, कहाँ है? आहाहाहा!

यह आचार्य कहते हैं कि आहाहा! नौ के भेद तो ठीक, वे तो नहीं, परन्तु द्रव्य जो मेरा स्वभाव है, उसमें एकाग्रता-एकरूप दशा वह मुझे हो। आहाहा! दृष्टि की अपेक्षा से तो एकरूप हुए हैं परन्तु अभी विकल्प है। आहाहा! दृष्टि की अपेक्षा से तो एकरूप दृष्टि -स्वभाव की एकता हुई है परन्तु अभी चारित्र की अपेक्षा में उसमें विकल्प की अस्थिरता (है)। साधक है तो बाधक (भाव भी) आता है। साध्य पूर्ण हो, वहाँ बाधकपना नहीं आता है और जहाँ साधकपना है ही नहीं मिथ्यात्व में (साधकपना है ही नहीं), वहाँ अकेला बाधकपना पड़ा है। आहाहाहा! समझ में आये उतना समझना प्रभु! यह तो गम्भीर चीज है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि इस व्यवहार को छोड़कर शुद्धनय का विषयभूत एक आत्मा.... देखो यहाँ तो तीन पर्याय भी नहीं.... विकल्प तो नहीं... आहाहाहा! हमें तो एक... पण्डित जयचन्दजी ऐसा अर्थ करते हैं। आहाहा! पाठ में है, उसे स्पष्ट करते हैं, यह कोई घर की बात नहीं करते हैं। आहाहाहा!

शुद्धनय का विषय अर्थात् ध्येय, जो त्रिकाली एकरूप ध्रुव भूतार्थ वस्तु, सत्यार्थ साहेब प्रभु, सत्य वस्तु — जो अनन्त गुण का पिण्ड, सत्य वस्तु पूर्ण है। आहाहा! वह शुद्धनय का विषय है। विषय शब्द से ध्येय है अथवा वही त्रिकाली वस्तु है, वही शुद्धनय

है। ११वीं गाथा में कहा है, '**भूयत्थो देसियो शुद्धनयो**' दूसरा पद है, पहला पद ऐसा है, '**व्यवहारो अभूयत्थो भूयत्थो देसियो**' भूतार्थ है, त्रिकाल एकरूप वस्तु है, वही शुद्धनय है। नय और नय के विषय का भेद निकालकर, आहाहा! वह त्रिकाली ज्ञायकभाव अनन्त अनन्त गुण का अपार स्वभाव का सागर प्रभु, जो एकरूप चीज है, आहाहा! उसी को यहाँ शुद्धनय कहा।

फिर दूसरे पद में लिया — ११ वीं गाथा में '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**' वह भूतार्थ वस्तु है, उसका आश्रय करते हैं — आश्रय का अर्थ इतना है कि पर्याय का लक्ष्य जो पर के ऊपर था, उस पर्याय का लक्ष्य यहाँ आत्मा पर आया तो आश्रय किया — ऐसा कहने में आता है। वरना द्रव्य और पर्याय एक हो जाते हैं — ऐसा तो है नहीं। आहाहा! क्या कहा? सम्यग्दर्शन की पर्याय.... समझ में आया? उसका विषय भूतार्थ है, तो त्रिकाली वस्तु की प्रतीति आ गयी, प्रतीति हुई, वह प्रतीति सम्यग्दर्शन का लक्षण प्रतीति है। प्रतीति हुई परन्तु उस प्रतीति में द्रव्य और गुण की.... जहाँ ध्रुवता जो यहाँ शक्ति है, उस प्रतीति में वस्तु आयी नहीं, वस्तु की जितनी सामर्थ्य है, उतनी प्रतीति में आ गयी। पण्डितजी! आहाहाहा! ऐसा मार्ग प्रभु! ऐसा मार्ग है। अस्ति — इस प्रकार। आहाहाहा! लालचन्दजी! यह बाहर की लगा बैठे, प्रभु! यह बात नहीं। आहा! अन्दर में महाप्रभु सुखामृत के सागर से भरपूर समुद्र अन्दर उछलता है। आहाहा! ऐसी एकरूप चीज हमें प्राप्त हो — ऐसा आचार्य कहते हैं। दृष्टि में तो एकरूप हुए ही है (किन्तु) श्रोता को साथ में लेकर, हमें यह प्राप्त हो और तुम्हें भी यह प्राप्त हो — ऐसा (कहते हैं)। आहाहा! आहाहा!

हम दूसरा कुछ नहीं चाहते.... हम दूसरा कुछ नहीं चाहते। पर्याय के भेद भी हम नहीं चाहते। आहाहा! नव तत्त्व के भेद के विकल्प की श्रद्धा तो हम नहीं चाहते है... आहाहा! परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के तीन भेद जो पर्याय व्यवहारनय से है... तत्त्वार्थसूत्र में जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग कहा, वह व्यवहारनय से — पर्याय प्रधानता से कहा है। आहाहा! समझ में आया? आहा! यहाँ तो प्रभु आचार्य ऐसा कहते हैं.... वह पाठ में है और कलश अमृतचन्द्राचार्य का है। **तन्मुकत्त्वा**

नवतत्त्वसन्ततिमि -मामात्मायमेकोऽस्तु नः। 'नः' अर्थात् नकार नहीं। 'नः' अर्थात् हमें। आहाहा! हमें तो एक भगवान आत्मा एकस्वरूप है, वह भेद बिना, अनेकता बिना, व्यवहार बिना एकरूप की प्राप्ति हमें हो। आहाहा! समझ में आया? धन्नालालजी! आहाहाहा! अभी गम्भीर बात है।

हम दूसरा कुछ नहीं चाहते,.... तो इसका अर्थ कि हम पर्याय भी नहीं चाहते। यह क्या कहते हैं? **यह वीतराग अवस्था की प्रार्थना है....** पर्याय नहीं है — ऐसा नहीं है। पर्याय नहीं है, अकेला द्रव्य है — ऐसी मान्यता तो मिथ्यात्व है। आहाहा! पण्डित जयचन्दजी ने भी पाठ में भाव है, उसे खोलकर स्पष्टीकरण किया है। समझ में आया? कि आचार्य महाराज प्रभु तो ऐसा कहते है न अमृतचन्द्राचार्य, ऐसे प्रत्येक सन्त (ऐसा कहते हैं कि) हमें तो एकरूप आत्मा प्राप्त हो। तीन पर्याय — दर्शन, ज्ञान, चारित्र की, यह तो आयी नहीं कि यह तो हमको एकरूप प्राप्त हो। यह वीतराग अवस्था की प्रार्थना है। हमें वीतरागता हो, यह प्रार्थना है। समझ में आया? आहाहा! क्योंकि चारों ही अनुयोगों का तात्पर्य (वीतरागता है — ऐसा) पंचास्तिकाय १७२ गाथा में लिया है। चारों अनुयोगों का तात्पर्य क्या है? कि भाई! द्रव्यानुयोग में ऐसा है और करुणानुयोग में ऐसा है और अमुक में ऐसा है, चारों अनुयोगों का तात्पर्य.... प्रभु! वीतरागता है। आहाहा! १७२ गाथा पञ्चास्तिकाय! तो वीतरागता तात्पर्य! परमात्मा के चारों ही अनुयोग की वाणी में तात्पर्य वीतरागता है।

अब वह वीतरागता का तात्पर्य, पर्याय में कैसे प्रगट होगा? आहाहा! उसका अर्थ ही यह आया कि चारों ही अनुयोग का तात्पर्य तो वीतरागता है तो वह वीतरागता स्वद्रव्य के आश्रय से होती है; अतः त्रिकाली द्रव्य का आश्रय करना, वह उसका तात्पर्य है। आहाहा! समझ में आया? है न? पञ्चास्तिकाय, १७२ गाथा (में यह बात है)। सूत्र तात्पर्य तो प्रत्येक गाथा में कहते आये हैं, परन्तु सर्व शास्त्रों को तात्पर्य क्या है? वीतरागता प्रगट करना। तो वीतरागता प्रगट हो वह कैसे हो? कि वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा है... समझ में आया? आहाहा! पण्डितजी! अभी वह पत्र आया है, पढ़ा है? जापान का एक पत्र (आया है) जगमोहनलालजी ने लिखा है, पढ़ा है? नहीं पढ़ा? वह बाद में पण्डितजी को देना। जापान में एक बड़ा पण्डित है, ६३ वर्ष की उम्र है, और उसका बड़ा लड़का १७

वर्ष की उम्र है। उसने जैनधर्म की शोध की, सब ऐतिहासिक शोध की है। शोध करते-करते-करते-करते पूरा तो उसे कहाँ.... परन्तु उसने ऐसा निकाला कि जैनधर्म क्या ? कि अनुभूति वह जैनधर्म है - ऐसा निकाला। अपने पास वह पत्र आया है। सब ले लेना, सब बाद में पढ़ना। वह जगमोहनलालजी ने (समाचार पत्र में) डाला है कि देखो! जापान के पण्डित शोधक जीव भी ऐसा कहते हैं.... यद्यपि पूर्ण स्वरूप तो उन्हें कहाँ ख्याल में होगा, परन्तु अनन्त गुण और ऐसा ख्याल (न हो), तथापि उसने ऐसा तो निकाला कि जैनधर्म क्या ? अनुभूति। दो बोल कहे हैं,.... और वस्तु है वह, आत्मा वह क्या है ? कि वस्तु निर्वाणस्वरूप है। अपनी भाषा में कलश टीका में ऐसा कहा कि वस्तु है यह 'मुक्तस्वरूप' है। मुक्तस्वरूप कहो या निर्वाणस्वरूप कहो, क्योंकि मुक्तस्वरूप जो है, उसमें से मुक्तपर्याय प्रगट होगी। राग से नहीं होगी, परन्तु पूर्व की पर्याय — मोक्ष के मार्ग की है, उससे भी मोक्षपर्याय उत्पन्न नहीं होगी। मोक्ष का मार्ग है, वह तो व्यय होता है, फिर मोक्ष की पर्याय उत्पाद होती है, तो उत्पाद का कारण वह व्यय नहीं। आहाहा!

मुक्तस्वरूप जो भगवान आत्मा.... आहाहा! उसने ऐसा लिखा है, दो शब्द उसमें से अच्छे लगे अपने को, वह तो ठीक, परन्तु मूल चीज तो कहाँ किसी को हाथ में आये। अन्यमति को कहाँ पता पड़े, समझे ? आहाहा! यह तो ऐतिहासिक शोध कर उसने जैनधर्म के पत्र में यह अच्छे बोल लिखे हैं। जगमोहनलालजी ने समाचार-पत्र में दिये हैं। कौन सा समाचार पत्र ? 'अहिंसा वाणी' — उसमें दिया है। आहाहा!

अपने को तो यहाँ यह सिद्ध करना है कि प्रभु जो आत्मा है, वह तो मुक्तस्वरूप है। जैसे १५ वीं गाथा में कहा है कि '**जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं**' अबद्ध कहो... नास्ति से अबद्ध कहा, अस्ति से मुक्त है। समझ में आया ? आहाहा! जिसने अबद्धस्वरूप — ऐसा मुक्तस्वरूप भगवान को जिसने देखा, जाना, अनुभव किया, वह जैनशासन है, क्योंकि 'जिन सो ही है आत्मा' 'घट घट अन्तर जिन वसे और घट घट अन्तर जैन, मत मदिरा के पान सो मतवाला समझे न।' जिनस्वरूपी भगवान आत्मा, प्रत्येक आत्मा जिनस्वरूपी है। मुक्तस्वरूप कहो, वीतरागस्वरूप कहो, अबद्धस्वरूप कहो.... आहाहाहा! वह जिनस्वरूप है; त्रिकाल जिनस्वरूप है। उसके आश्रय से जिनस्वरूप की दशा प्रगट होती है। आहाहाहा!

श्रोता : अस्ति-नास्ति नहीं, हमें तो आप धर्म की बात कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहते हैं ? यह धर्म की बात तो चलती है। क्या है ? आहाहा! कभी विचार किया ही नहीं न ? इन सेठियों को दुकान में पैसा ऐसा लेना और ऐसा देना.... बाईस घण्टे अकेला धन्धा। स्त्री, पुत्र, परिवार और पैसे में बाईस घण्टे पाप-पाप, एक-दो घण्टे रहे तो उसमें वाँचन करे, बाकी बाईस घण्टे पाप। आहाहा! 'ऐरन की चोरी और सुई का दान...' ऐरन समझते हो, लोहे की ? स्वर्णकार की होती है न ? ऐरन, लोहे की होती है न ? उस पर गहने गढ़ते हैं, उसे ऐरन कहते हैं। तुम्हारे क्या कहते हैं ? 'ऐरन की चोरी और सुई का दान...' — इस प्रकार बाईस घण्टे पाप और उसमें एक घण्टे-दो घण्टे सुनने को आये तो वह भी शुभभाव है। आहाहा! धर्म तो, यह चीज ऐसी चीज है। आहाहा! कि उस शुभराग की, नव तत्त्व की-भेद की श्रद्धा भी आत्मा की वस्तु नहीं है। आहाहा! भेद की श्रद्धा, हाँ! नव तत्त्व की अभेद की श्रद्धा वह सम्यग्दर्शन है। तत्त्वार्थसूत्र में लिया है न! नौ, वह एकवचन है। जीव-अजीव, पुण्य-पाप (इत्यादि) यह नौ लिये हैं परन्तु वहाँ एकवचन लिया है। तत्त्वार्थसूत्र (में) वह बहुवचन नहीं एकवचन है। बहुवचन तो भेद हो जाता है। है ? तत्त्वार्थसूत्र में — सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिं मोक्षमार्गः... फिर सम्यग्दर्शन में लेते हैं — जीव, अजीव, आश्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष — यह सब एकवचन है, एकरूप है — ऐसा एकवचन लिया है। आहाहा!

सन्तों की वाणी, भले व्यवहार से आयी, पर्याय (से आयी) परन्तु उसका क्या आशय है! उमास्वामी हो या कोई भी दिगम्बर सन्त... आहाहा! केवली के पथानुगामी, केवली के मार्ग पर चलनेवाले, एक दो भव में केवलज्ञान लेनेवाले हैं। आहाहा! भाई! उनकी वाणी का पता (थाह) लेना... बापू! बहुत कठिन बात है, अशक्य तो नहीं है परन्तु कठिन बात तो है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि हमारे एकरूप आत्मा हो तो वह एक निश्चयनय के विषय की प्रार्थना हुई, तो पर्यायनय का विषय नहीं है ? कि ऐसा नहीं है। यहाँ जो ऐसा कहा है कि हमें एकरूपता हो, वह वीतरागपर्याय की प्रार्थना है, वीतरागभाव की प्रार्थना है। एक नय ही हमें प्राप्त हो और पर्याय आदि है ही नहीं — ऐसा नहीं है। आहाहा!

क्योंकि जो एकरूप हमें प्राप्त हो, वह भी पर्याय है और पर्याय में एकरूप प्राप्त हो तो वह तो पर्याय में आया है। आहाहा!

क्या प्रभु का कथन! आहाहा! तेरा चैतन्य हीरा अनन्त गुण के शृंगार से शोभित प्रभु! आहाहा! यह शृंगाररस में डाला है। 'अध्यात्म पंच संग्रह', है न, दीपचन्दजी का! दीपचन्दजी हो गये हैं न साधर्मी! १. अनुभवप्रकाश, २. चिद्विलास,.... उसमें अध्यात्म पंच संग्रह लिया है, यहाँ है, यहाँ है न? नहीं आया लगता, वहाँ होगा। अध्यात्म पंच संग्रह... अध्यात्म पंच संग्रह, आहाहा! उसमें ऐसा लिया है कि अपना शृंगार क्या? शृंगाररस! नव रस हैं न नव, तो शृंगाररस लिया है। एक-एक गुण में शृंगाररस लिया है। अपने-अपने गुण में पर को न आने देना और अपनी शोभा अपने में रखना, वह शृंगाररस है। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा अनन्त गुण की पर्याय से निर्मल प्रगट होकर उसने अपना शृंगार किया। यहाँ इस शरीर का शृंगार करते हैं न, गहने, लोहे के लो! और सोने के, हीरे के हैं तो सब धूल, हैं न? यहाँ लटके और यहाँ लटके.... आहाहा!

यह कणवी है न, अभी हीरा से सम्मान करनेवाले हैं, बारीक-बारीक हीरा से। बहिन का जन्मदिन आता है न दूज, श्रावण कृष्ण दूज, उस दिन एक भाई शिवलालभाई साढ़े तेरह हजार रुपये के हीरे से सम्मान करेगा। साढ़े तेरह हजार रुपये के हीरे हैं, उसमें से सात हजार रुपये देगा, उसमें से निकालकर। बहिन के जन्मदिन पर। हमने तो अस्सी हजार का हीरा देखा था, एक बार बेचरभाई ने बताया था राजकोट, करोड़पति है न बेचरभाई और नानालालभाई। यह बारीक... बारीक... बारीक, यह सफेद परमाणु की पर्याय, जड़ की चमकती... चमकती... चमकती पर्याय... अरे प्रभु! इस हीरा से तो तेरी चीज... आहाहा! अनन्त गुण के पासा से चमकता हीरा तेरी चीज तेरे में है। यहाँ आचार्य ऐसा कहते हैं कि हमको वह आत्मा प्राप्त हो, बस! अभेददशा की प्राप्ति चाहते हैं।

यह कहते हैं न? **यह वीतरागदशा की प्रार्थना है। कोई नयपक्ष नहीं है....** यह क्या कहा? अकेला निश्चय ही हमें प्राप्त हो तो पर्याय नहीं है — ऐसा नहीं है। आहाहा! क्योंकि मोक्षमार्ग और मोक्ष स्वयं, स्वयं पर्याय है, सिद्ध पर्याय है, मोक्षमार्ग पर्याय है। आहाहा! अकेले द्रव्य की इच्छा करने में अकेला नयपक्ष है नहीं, उसमें वीतरागता प्राप्त

होना, वीतरागभाव की भावना है। आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं। **कोई नयपक्ष नहीं है,** वरना तो पर्याय जो मोक्षमार्ग है, किन्तु यहाँ तो हमें द्रव्य प्राप्त हो, अभेद बस! तो भेद कोई चीज नहीं है? पर्याय भेद है, पर्याय वह व्यवहारनय का विषय है, द्रव्य निश्चयनय का विषय है परन्तु निश्चयनय का एकान्त पक्ष चाहते हैं तो दूसरा पक्ष रह जाता है। अतः यहाँ नयपक्ष की बात नहीं है। यहाँ तो हमें वीतरागता प्राप्त हो, आहाहा! समझ में आया? ज्ञानचन्दजी! प्रभु का मार्ग तो ऐसा है, भाई! आहाहा! आहाहा! अलौकिक बातें हैं! उनके एक-एक पद के भाव को प्राप्त करना, बहुत कठिन बात है। आहाहा! इन पण्डित ने (पण्डित जयचन्दजी ने) इसका स्पष्टीकरण किया, उसे समझना भी कठिन है।

यहाँ पाठ ऐसा है न? छठवें श्लोक की अन्तिम लाईन **तन्मुक्त्वा नवतत्त्वसंतति -मिमामात्मायमेकोस्तु नः ॥** हमें तो एक आत्मा हो, वह तो एक शुद्धनय का पक्ष हुआ परन्तु यहाँ वीतराग होना यह प्रार्थना है। अकेला यही पक्ष है और पर्याय नहीं है — ऐसा नहीं है। यह कहते हैं, देखो, समझ में आया?

यदि सर्वथा नयों का पक्षपात ही हुआ करे तो मिथ्यात्व ही है.... आहाहा! क्या कहते हैं? कि सर्वथा अकेला शुद्धनय का विषय हो और व्यवहार — पर्याय है ही नहीं — ऐसा यदि सर्वथा नयपक्ष करे तो मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? अब यहाँ यह श्लोक पूरा हुआ। छठवाँ श्लोक — कलश है न कलश!

यहाँ कोई प्रश्न करता है कि आत्मा चैतन्य है, मात्र इतना ही अनुभव में आये तो इतनी श्रद्धा सम्यग्दर्शन है या नहीं ?..... चैतन्यवस्तु, चैतन्यवस्तु अकेली है। यह इतना मात्र यदि अनुभव में आवे तो वह श्रद्धा है या नहीं? **उसका समाधान यह है — नास्तिकों को छोड़कर सभी मतवाले आत्मा को चैतन्यमात्र मानते हैं;...** चेतन है — ऐसा तो नास्तिक के सिवाय सभी मानते हैं। कहते हैं ऐसा नहीं (मानते हैं)। **यदि इतनी ही श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा जाये तो सबको सम्यक्त्व सिद्ध हो जाएगा,....** देखो! क्या कहते हैं जरा... **इसलिए सर्वज्ञ की वाणी में जैसा सम्पूर्ण....** आहाहा! क्योंकि जीव जो आत्मा है वह सर्वज्ञस्वरूपी है। क्या कहा? भगवान जो आत्मा है, वह सर्वज्ञस्वभावी है, सर्वज्ञ उसकी एक शक्ति-गुण है। अतः सर्वज्ञस्वरूप ही आत्मा है तो

उस सर्वज्ञस्वरूप में से पर्याय में सर्वज्ञपना आया, उस सर्वज्ञ ने सब जाना। उनकी वाणी में जो आया, वह ही यथार्थ है। आहाहा! वह उन्होंने कहा जो आत्मा (वही सत्यार्थ है)। अज्ञानी तो आत्मा, आत्मा तो बहुत कहते हैं... समझ में आया? **सर्वज्ञ की वाणी में जैसा सम्पूर्ण आत्मा का स्वरूप कहा है....** आहाहा! जिसकी एक पर्याय में सम्पूर्ण द्रव्य-गुण और सर्वद्रव्यों को जानने की एक पर्याय में सामर्थ्य है, एक ही पर्याय हो तो सारा द्रव्य गुण, सारे छह द्रव्य, गुण समस्त एक पर्याय में... ऐसे भगवान की वाणी में आया है, ऐसी चीज दूसरे किसी जगह है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! और वह भी ऐसा क्यों कहा? कि यह जीव है और प्रत्येक 'ज्ञ' स्वरूपी है। 'ज्ञ' स्वरूपी में जो 'ज्ञ' के साथ सर्व शब्द जोड़ दो तो सर्वज्ञस्वरूपी ही है। आहा!

भगवान आत्मा सर्वज्ञस्वभावी, समस्त अनन्त आत्माएँ सर्वज्ञस्वरूपी हैं। इस सर्वज्ञस्वरूपी में से पर्याय में सर्वज्ञपना आता है। सर्वज्ञस्वरूप में से सर्वज्ञपर्याय आती है। आहाहा! उसमें पर्याय में जो सर्वज्ञपना आया, उसने जो आत्मा देखा और छह द्रव्यादि देखे... आहाहा! समझ में आया? उसने जो आत्मा कहा... है? चैतन्य, चैतन्य तो सब कहते हैं परन्तु यह चैतन्य भगवान अनन्त गुण और अनन्त धर्म (युक्त) जिनका माप नहीं — ऐसी अनन्त पर्याय और ऐसा आत्मा तो सर्वज्ञ की वाणी में आया है। आहाहा! समझ में आया? वैसे ऊपर-ऊपर से हाथ आवे ऐसा नहीं है, प्रभु! आहाहा! यह तो गहरे... गहरे... गहरे... आहाहा! जिसके ध्रुव.... पर्याय में से ध्रुव का तल है अन्दर, पर्याय तो ऊपर-ऊपर है, एक समय की (है), उसका तल जो ध्रुव, पाताल है। पाताल कुआँ होता है न, पाताल कुआँ! वैसे पर्याय का पाताल, ध्रुव है। आहाहा! अरे! यह सर्वज्ञ की वाणी में ऐसा आया है। इसके अतिरिक्त कहीं ऐसी बात नहीं होती। कहीं (नहीं)। समझ में आया?

श्वेताम्बर में भी एक समय में ज्ञान और दूसरे समय में दर्शन — ऐसी व्याख्या करते हैं, (परन्तु) यह वस्तु तो ऐसी है नहीं। एक समय में सर्वज्ञ का उपयोग दूसरे समय दर्शन उपयोग — सर्वदर्शी उपयोग — ऐसा नहीं है, ये उपयोग एक समय में दोनों ही हैं। आहाहा!

दीपचन्दजी ने पंच संग्रह में अद्भुतरस का वर्णन किया है, उसमें ऐसा वर्णन किया है, प्रभु! एक बार सुन तो सही, कि जो ज्ञान की पर्याय सबको भेद करके — भेद

करके — अनन्त जीव, अनन्त परमाणु, अनन्त गुण, अनन्त गुणों की अनन्त पर्यायें, एक-एक पर्याय के अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद, यह ज्ञान की पर्याय सबको भेद है — ऐसा जानती है। एक-एक भेद सब-सबको जानती है और उसी समय दर्शन की पर्याय किसी का भेद किये बिना (देखती है) आहाहा! यह अद्भुतता तो देखो! कहते हैं। आहाहा! सर्वज्ञ की पर्याय, यह जीव है, यह जड़ है, यह जीव का धर्म है, यह जड़ का धर्म है, यह जीव की पर्याय है, यह जड़ की पर्याय है, इस एक पर्याय में अनन्त ताकत है - ऐसी प्रतिच्छेद भेद... भेद... भेद.. अन्तिम अंश का कि जिसमें दूसरा अंश है ही नहीं, उसे भी जिसने केवलज्ञान में जान लिया, आहाहा! उसी ज्ञान की पर्याय के साथ जो दर्शन की पर्याय है, वह है, बस, भेद नहीं! अरे! एक पर्याय की इतनी ताकत और दूसरी पर्याय में 'है' इतना... आहाहा! समझ में आया?

नास्तिक को छोड़कर आत्मा को चैतन्यमात्र मानते हैं.... इतनी श्रद्धा हो तो सबको सम्यग्दर्शन हो जाये, किन्तु सर्वज्ञ की वाणी में जैसा सम्पूर्ण आत्मा का... आहाहा! त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव सर्वज्ञ पर्याय में जैसा देखा सारा लोकालोक; उसने जो आत्मा कहा, आहाहा! वह आत्मा अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुणस्वरूप और अनन्त पर्यायसहित और वह द्रव्य अपने गुण-पर्याय में व्यापक — यह पहले — कल आ गया है। परसों आ गया, सूक्ष्म बात आ गयी थोड़ी।

यह आत्मा है, यह गुण-पर्याय में व्याप्त है। गुण और विकारी पर्याय में भी व्याप्त है। पहले आ गया है। है? पहले श्लोक में इसमें है या न इसमें? 'व्याप्तु' पहला पद है। 'व्याप्तु' यह कलश का पहला पद, व्याप्तु की व्याख्या यह है कि यह जो आत्मा है, वह अपने अनन्त गुण और विकारी, अविकारी पर्याय, इन सबमें व्यापक है। यह प्रमाण का विषय पहले बताया। समझ में आया? व्याप्तु में, अपने गुण-पर्याय में व्यापक है। उसका अर्थ है कि शरीर को स्पर्श नहीं करता, कर्म को स्पर्श नहीं करता, शरीर को व्याप्त नहीं, कर्म को व्याप्त नहीं, और कर्म से अपने में विकारी पर्याय व्याप्त है — ऐसा भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह अपने गुण-पर्याय में व्याप्त का अस्तित्व, विकारी पर्याय का अस्तित्व भी अपने में व्याप्त अपने से है — ऐसा बताकर फिर आत्मा प्रमाण का विषय इतना है परन्तु शुद्धनय का विषय क्या है? यह अब बतायेंगे। है न?

पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिहः ऐसा आत्मा है, वह तो प्रमाण का विषय हुआ और प्रमाण का विषय पूज्य नहीं है। प्रमाण पूज्य नहीं है, क्योंकि प्रमाण दो को विषय करता है; अतः व्यवहार का विषय हो गया। प्रमाण व्यवहार का विषय है, दो आये न ? पंचाध्यायी में है। प्रमाण को व्यवहार का विषय कहा है। दो आये न ? एक नहीं रहा। आहाहा ! नयचक्र में तो ऐसा आया — प्रमाण में पर्याय का निषेध नहीं होता; इसलिए वह पूज्य नहीं है; जो निश्चयवस्तु है, उसमें पर्याय का निषेध होता है; इसलिए निश्चयनय पूज्य है। अतः यहाँ कहते हैं कि हमें.... आहाहा ! जैसा सर्वज्ञ की वाणी में जैसा आत्मा द्रव्य-गुण और पर्याय आया है, वैसा अन्दर में प्रतीति और अनुभव में आता है तो उसका नाम सम्यग्दर्शन कहते हैं — ऐसा चैतन्यमात्र, मात्र कहते हैं, यह सारी दुनिया कहती है। नास्तिक के अतिरिक्त (सारी दुनिया कहती है) परन्तु सर्वज्ञ भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ की पर्याय में जैसा आत्मा देखा और जैसा आत्मा है, वैसा कहा है — ऐसे आत्मा की प्रतीति करे तो निश्चय सम्यग्दर्शन होता है, वरना नहीं होता।

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)